श्रावस्ती

एम० वेंकटरम्या

श्रा व स्ती



भारतीय पुरातत्त्व विभाग



भारतीय पुरातत्त्व विभाग

श्रा व स्ती

लेखक

एम० वेङ्कटरमय्या

अनुवादक

केदारनाथ शास्त्री



प्रकाशक :—मुख्याध्यक्ष, भारतीय पुरातत्त्व विभाग नई देहली।

मुद्रक : कारोनेशन प्रिंटिंग वर्क्स, फतेहपुरी, देहली-६।

१९५९

मूल्य ५० न० पै०

विषय सूची

फलक सूची

भूमिका

श्रावस्ती का प्राचीन नगर, जिसे बौद्ध तथा जैनी एक समान पूज्य मानते हैं, इस समय सहेठ-महेठ के खंडहरों के नाम से विदित है। इनका कुछ भाग उत्तर प्रदेश के गोंडा ज़िले में और कुछ बहराइच ज़िले में विखरा पड़ा है। ये खंडहर उत्तर-पूर्वी रेलवे की गोंडा-गोरखपुर लाइन पर बलरामपुर स्टेशन से ग्यारह मील पश्चिम में हैं। बलरामपुर से बहराइच आने वाली बड़ी मोटर सड़क इनके पास से गुजरती है और इस स्थान से छोटी सड़क खंडहरों तक पहुंचाती है। सहेठ-महेठ पहुंचने के लिए सुगम साधन बलरामपुर-बहराइच के बीच चलने वाली सरकारी बस हैं। इसके अतिरिक्त मोटर रिक्शा आदि और सवारी भी बलरामपुर से मिल सकती हैं। इस स्थान पर ठहरने के लिये केवल दो छोटी धर्मशालाएँ हैं जिनमें एक जैनियों की और दूसरी बर्मा के बौद्ध लोगों द्वारा संचालित है। खंडहरों के पास ही दो आधुनिक बौद्ध मन्दिर भी हैं। इनमें एक बर्मा के बौद्धों का और दूसरा चीनी बौद्धों का बनवाया हुआ है। यहां यात्री कुछ समय के लिए ठहर सकते हैं। सहेठ-महेठ से पाँच मील पश्चिम में बहराइच जाने वाली सड़क पर स्थित 'इकौना' गांव में एक छोटा सा डाक बंगला है जिसका प्रबन्ध बहराइच के एसिस्टेंट इंजिनीयर के अधीन है। श्रावस्ती के दर्शकों को चाहिये कि वे सायंकाल तक इकौना या बलरामपुर लौट जायें। बलरामपुर एक खासा कस्बा है। यहां पी० डबल्यू० डी० का बड़ा डाक बंगला है जिसका नियंत्रण वहां के एसिस्टेंट इंजीनियर के हाथ में है। इसके अतिरिक्त यहां बलरामपुर के महाराजा का भी एक सुन्दर अतिथि-निवास तथा विशाल धर्मशाला है।

सहेठ-महेठ जो समस्त खंडहर का संयुक्त नाम है वस्तुतः इसके दो भिन्न-भिन्न भागों का परिचायक है। इनमें 'सहेठ' भाग जो बड़ी मोटर

सड़क के निकट है. जेतबन नाम उस प्रसिद्ध बौद्ध बिहार का ध्वंस है जो श्रावस्ती के बाहर बना था। इस ध्वंस का क्षेत्रफल १५०० × ५०० वर्गफुट के लगभग है और इसमें अब केवल संघारामों और स्तूपों की बुनियादें और पीठिकाएं ही अवशिष्ट हैं। खंडहर का दूसरा भाग, अर्थात् महेठ, जो सहेठ से प्राय: आध मील के अन्तर पर है, श्रावस्ती नगर का ध्वंस है। यह सहेठ से कई गुणा बड़ा है और निकटवर्ती अचिरावती (राप्ती) नदी के दक्षिण में स्थित है। प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में यह नगर प्राकार से घिरा हुआ था जिसका नीचे का भाग मिट्टी का तोंदा था परन्तु ऊपर के भाग में ईंटों की दीवार बनी थी। परिधि में सवा तीन मील लम्बे प्राकार में दृढ-वप्रों से सुरक्षित कई एक प्रवेश द्वार आज भी दिखाई देते हैं। इस नगरक्षेत्र के अन्तर्गत ध्वंसावशेषों में बौद्ध, हिन्दू तथा जैन धर्मानुयायिओं के मठमन्दिरादि के अवशेष और कुछ मध्य-कालीन मकबरे भी समाविष्ट हैं।

इतिहास

प्राचीनता और उत्पत्ति

श्रावस्ती भगवान् बुद्ध के काल से बहुत प्राचीन है, क्योंकि रामायण और महाभारत में बहुधा वर्णन आता है कि यह कौशल देश का समृद्ध नगर था। पुराणों में उल्लेख है कि यह उत्तर-कोशल की राजधानी थी। महाभारत में इस विषय का प्रमाण मिलता है कि इस नगर की स्थापना अज्ञात-वृत्त राजा श्रावस्त ने की थी। अस्तु, 'श्रावस्ती' नाम की उत्पत्ति के विषय में यथार्थतः कुछ नहीं कहा जा सकता क्योंकि इस सम्बन्ध में कई मतभेद हैं। इस नगर के उत्तरकालीन दो और नाम भी उपलब्ध होते हैं जिनमें एक चम्पकपुरी और दूसरा चन्द्रिकापुरी है। इसके आधुनिक नाम 'सहेठ-महेठ' की व्याख्या करना कठिन है, परन्तु हो सकता है कि इस नाम का प्रादुर्भाव 'श्रावस्ती' के पाली अपभ्रंश 'सावत्थी' से हुआ हो।

बुद्ध के समय में

छठी सदी ईसापूर्व से पहले का श्रावस्ती का इतिहास प्रायः अज्ञात है। परन्तु भगवान् बुद्ध तथा जिनेन्द्र महावीर के जीवन से सम्बद्ध होने के कारण छठी सदी से यह नगर इतिहास के आलोक में आता है। बौद्ध धर्म के आठ तीर्थ स्थानों में से श्रावस्ती भी एक था क्योंकि यहाँ बुद्ध ने महा-चमत्कार तथा अन्य कई छोटे चमत्कारों का प्रदर्शन किया था। शेष सात तीर्थस्थान बुद्धजीवन से इस प्रकार सम्बद्ध हैं—(१) लुम्बिनी, जन्मस्थान; (२) बोध गया, सम्बोधि प्राप्त करने का स्थान, (३) सारनाथ, जहाँ धर्मचक्र प्रवर्तन किया गया (४) राजगृह, जहाँ बुद्ध ने मदमत्त हाथी का दमन किया; (५) वैशाली, जहाँ एक बन्दर ने बुद्ध को मधु की भेंट की, (६) सांकाश्य, जहां उन्होंने स्वर्ग से अवरोहण किया;

और (७) कुशीनगर, जहाँ बुद्ध का निर्वाण हुआ। ये आठ जीवन घटनाएँ बौद्ध-मूर्तिकला का प्रधान विषय बनीं।

बुद्ध के समय श्रावस्ती का राजा प्रसेनजित् था। जैनियों के धर्म-ग्रन्थों में उसका नाम जितशत्रु आता है। बुद्ध के श्रावस्ती आने से पहले जैनियों के अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर के यहाँ बहुत अनुयायी थे, और उनका प्रसेनजित् पर गहरा प्रभाव था। परन्तु शीघ्र ही श्रावस्ती के धनाढ्य व्यापारी सुदत्त के द्वारा, जो पहले राजगृह में बुद्ध से मिल चुका था, बुद्ध का यश श्रावस्ती में पहुँचा। सुदत्त एक आदर्श दानी था और अनाथपिण्डिक (संस्कृत-अनाथपिण्डद अर्थात् 'अनाथों का पालने वाला') नाम से विख्यात था। पहली ही भेंट में वह बुद्ध का भक्त बन गया और उसने उन्हें श्रावस्ती आने के लिये आमंत्रित किया। क्योंकि श्रावस्ती में बुद्ध के निवास के लिये कोई बिहार नहीं था, इसलिये बुद्ध ने उसके निमन्त्रण को उस समय स्वीकृत नहीं किया। घर लौट कर सुदत्त ने बुद्ध के स्वागतार्थ एक उत्तम बिहार बनाने में कोई कसर बाकी नहीं रखी।

जेतवन-विहार की स्थापना

चीनी यात्री ह्वेन-सांग, जिसने सातवीं सदी ईसवी में भारत का पर्यटन किया, लिखता है कि बुद्ध का प्रधान शिष्य सारिपुत्र विहार-निर्माण कार्य में सहायता देने के लिये सुदत्त के साथ श्रावस्ती गया। वहां इस विहार के लिये केवल एक ही उचित स्थान था और वह राजा प्रसेनजित् के पुत्र राजकुमार जेत का उद्यान था। जब सारिपुत्र ने राजकुमार को वह स्थान बेच देने के लिये कहा तो उसने इसका बहुत बड़ा मूल्य माँगा—अर्थात् इतनी सुवर्ण-मुद्राएं जितनी भूमि पर बिछाने पर सारे उद्यान को ढक लें। बुद्ध में सुदत्त की अपार श्रद्धा थी। उसने यह मूल्य देना स्वीकार कर लिया और अपने कोश में से बाग़ को

प्रायः सारी भूमि को सोने की मुहरों से ढक दिया। जब थोड़ी सी भूमि शेष रह गयी तो राजकुमार ने सुदत्त को रोका और उस बची भूमि पर उसने स्वयं मन्दिर बनवाया। ह्वेन-साँग अपने इतिवृत्त में पुनः लिखता है कि इन भेंटों की पुण्य स्मृति को जीवित रखने के लिये बुद्ध भगवान् ने आदेश दिया कि भविष्य में इसका नाम 'जेतवन-विहार का अनाथ-पिण्डद-आराम' व्यवहार में आए। प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों में इस घटना के भिन्न-भिन्न विवरण मिलते हैं जो इस प्रकार हैं—सुदत्त ने जो सुवर्ण-मुद्राएं भूमि पर बिछाईं उनकी संख्या १८ करोड़ थी जिन्हें जेत ने बुद्ध के लिये महल बनाने पर व्यय किया। इसके अतिरिक्त अनाथपिण्डिक ने १८ करोड़ और सुवर्ण मुद्राएं मन्दिर, संघाराम, कोष्ठागार, कुएँ आदि बनाने में खर्च कीं। यह भी वर्णन पाया जाता है कि जेतवन विहार की प्रतिष्ठा विधिपूर्वक की गई और इस पर भी अनन्त धन व्यय हुआ। इस घटना का सुन्दर चित्रण भर्हुत से प्राप्त ईसापूर्व दूसरी सदी के एक मूर्तिफलक पर उत्कीर्ण है। इस फलक में (जिसका छायाचित्र इस पुस्तिका के आवरण पर छपा है) अशर्फियों से लदी बैलगाड़ी खड़ी है और दो मनुष्य अशर्फियों को भूमि पर बिछा रहे हैं। अनाथपिण्डिक हाथ में जलपात्र लिये परम्परागत प्रथा के अनुसार दान का संकल्प करने को उद्यत दीखता है। उसके सामने वेदिका से घिरा हुआ एक पूज्य वृक्ष है और पेड़ के पीछे छः मनुष्य खड़े हैं जो सम्भवतः जेत और उसके अनुचर हैं। चित्र में दो इमारतें भी दिखाई गयी हैं जिनमें से एक पर 'गंध कुटि' और दूसरी पर 'कोसम्ब कुटि' नाम अंकित हैं। मूर्तिफलक पर यह लेख है—"अनाथपिण्डिक द्वारा करोड़ों सुवर्ण-मुद्राओं से क्रीत जेतवन का दान।" बोध गया से प्राप्त एक दूसरे फलक पर भी यही विषय कुछ संक्षिप्त रूप से चित्रित है। गन्धकुटि और कोसम्बकुटि के अलावा जेतवन बिहार में और भी कई दर्शनीय प्रासाद थे जैसे—

करेरि कुटि, करेरि मंडलमाल और सललघर। सललघर प्रसेनजित् ने स्वयं उस समय बनवाया जब वह बुद्ध का परम भक्त बन गया।

प्रसेनजित् का बौद्ध धर्म-ग्रहण

सम्बोधि प्राप्त करने के अनन्तर तीसरी वर्षा ऋतु में बुद्ध जेतवन-विहार में आए और तब से लेकर लगातार चौबीस वर्ष तक वे हर वर्ष चौमासे में यहाँ निवास करते रहे। अपने पुत्र जेत का अनुकरण करते हुए राजा प्रसेनजित् ने भी एक समय जेतवन में बुद्ध के दर्शन किये और उनके उपदेशों को सुना, जिसके फलस्वरूप उसने बौद्धधर्म ग्रहण कर लिया। बौद्ध ग्रन्थों में बुद्ध और प्रसेनजित् के बीच धर्मचर्चा के अनेक प्रसङ्ग हैं जिससे पता लगता हैं कि राजा के हृदय में बुद्ध के लिये असीम श्रद्धा और भक्ति थी। राजा प्रसेनजित् बुद्ध का समवयस्क था और साथ ही दोनों की जन्मभूमि भी एक ही कोशल देश था। भार्हुत के एक फलक पर उत्कीर्ण चित्र में दिखाया गया है कि राजा चार घोड़ों वाले रथ पर सवार होकर सजधज से बुद्ध के दर्शनार्थ जा रहा है। इसमें बुद्ध का संकेत केवल धर्मचक्र से किया गया है। ह्वेनसांग ने लिखा है कि राजा ने अपने महल के निकट धर्मचर्चा के लिये एक महाशाला बनवाई थी।

पूर्वाराम की प्रतिष्ठा

बौद्ध भक्तिनी विशाखा ने, जिसे सिगार माता भी कहते थे, बुद्ध के निवास के लिये जेतवन के पूर्व में 'पूर्वाराम' नाम का एक भव्य संघाराम बनवाया। इसने कभी पहले रोगग्रस्त प्रसेनजित् को अपनी सेवा शुश्रूषा से रोगमुक्त किया था। फाहियान और ह्वेनसांग दोनों चीनी यात्रियों नें इस मठ की चर्चा की है और लिखा है कि यह संघाराम सुन्दरता तथा विशालता में जेतवन को छोड़कर अन्य सब वास्तुओं से उत्कृष्ट था।

यह लकड़ी और पत्थर का बना था और इस पर सत्ताईस करोड़ सोने की मुहरें व्यय हुई थीं।

अंगुलिमाल की बौद्धधर्म में दीक्षा—श्रावस्ती में अंगुलिमाल लुटेरे का बुद्ध के द्वारा बौद्ध धर्म में दीक्षित होना बौद्ध इतिहास में एक महत्त्व-पूर्ण घटना है। बौद्ध-साहित्य में इस का अनेक बार उल्लेख है। फाहियान और ह्वेनसांग ने उस स्थान का निर्देश भी किया है जहां इस लुटेरे को दीक्षा मिली थी। अंगुलिमाल (शब्दार्थ-अंगुलियों की माला) एक अत्याचारी मनुष्य था जिसने श्रावस्ती तथा आस पास के इलाके में आतंक मचा रखा था। वह लोगों की हत्या करता और वध किये हुए हर एक मनुष्य की अंगुलि काटकर अपनी माला में पिरो लेता था। माला में एक अंगुलि की कमी पूरी करने के लिये जब वह अपनी माता की हत्या करने पर उतारू होगया तो बुद्ध ने उसे इस नृशंस कार्य से रोका और अपने उपदेश से उसे बौद्ध धर्म में दीक्षित किया। यही लुटेरा अनन्तर भिक्षु बन गया और इसने अपने उच्च कर्मों के प्रभाव से 'अर्हत्' की पदवी प्राप्त की। परन्तु अपने पहले पापकर्मों के कारण भिक्षुदशा में भी वह लोगों के उपहास तथा निन्दा का पात्र बना। जहां कहीं भी वह भिक्षा मांगने जाता लोग उस पर पत्थर बरसाते थे। इसी लिये बुद्ध उसे अकसर कहा करते थे कि पापकर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है।

महा-चमत्कार

प्रसेनजित् बौद्ध बन गया था और प्रतिदिन जेतवन में बुद्ध के दर्शन करने जाया करता था। अब उसे जैन तथा आजीविक सम्प्रदायों के विरोध का सामना करना पड़ा। उन्होंने इस से पूछा कि बुद्ध में कौनसी अलौकिक शक्तियां थीं जिनके कारण वह उनसे बढ़ चढ़ कर था। राजा के पक्ष की पुष्टि के लिये बुद्ध ने इस ललकार को स्वीकृत किया और शक्ति प्रदर्शनार्थ स्थान तथा समय की घोषणा करदी। विवरण में

अंशत: भेद होने पर भी घटना का सारांश यह है कि बुद्ध ने अपनी अलौकिक शक्ति के प्रभाव से एक ही दिन में आम का विशाल पेड़ पैदा करके उसके नीचे कमलों पर आसीन अथवा स्थानमुद्रा में अनन्त बुद्धों की सृष्टि की जिनके शरीरों से एक साथ जल-धाराएं और आग की ज्वालाएं निकल रही थीं। बौद्ध मूर्तिकला में इस चमत्कार के असंख्य चित्र मिलते हैं। ह्वेनसांग श्रावस्ती के एक स्तूप के प्रसंग में लिखता है कि इस स्थान पर बुद्ध ने अपने प्रतिपक्षियों को परास्त किया था। परन्तु आश्चर्य की बात है कि उसके मत में यह बुद्ध का शिष्य सारिपुत्र था, न कि स्वयं बुद्ध, जिसे विधर्मियों ने ललकारा था और जिसने उनपर विजय प्राप्त की थी।

श्रावस्ती में जैन आजीविक

श्रावस्ती एक बलशाली राज्य की राजधानी ही नहीं अपितु विविध दार्शनिक मतमतान्तरों का गढ़ भी थी। बुद्ध के जन्म के पहले ही यहाँ कई दार्शनिक विचार धाराएं जन्म पा चुकी थी। जैनियों के चौबीसवें तथा अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर के यहाँ बहुत अनुयायी थे जो प्राय: धनाढय व्यापारी तथा साहूकार थे। आरम्भ में प्रसेनजित् भी उनमें से एक था। राजप्रसाद प्राप्त करने के अनन्तर महावीर ने श्रावस्ती में अपने सम्प्रदाय का गढ़ बनाया और कहा जाता है कि बुद्ध के साथ उनके शास्त्रार्थ भी हुए। बुद्ध के प्रभाव से यद्यपि श्रावस्ती में कुछ समय के लिये जैन धर्म का ह्रास होगया तथापि उत्तरकाल में इस स्थान से बौद्ध धर्म का लोप होजाने पर भी यह चिरकाल तक यहाँ जीवित रहा और फूला फला। श्रावस्ती सम्भवनाथ और चन्द्रप्रभ नाम दो अन्य तीर्थङ्करों का जन्मस्थान भी थी। इस लिये भी यह जैनियों का प्रिय पुण्यधाम बनी।

बुद्ध के समय यह नगर आजीविकों का गढ़ था। इस सम्प्रदाय का जैनियों से थोड़ा ही अन्तर है। इसका प्रसिद्ध आचार्य गोसाल मङ्खलिपुत्र

इस नगर की 'सरवन' नामक बस्ती में पैदा हुआ था। उसने अपना सारा जीवन शहर के कुम्हारों में, जो उसके अनुयायी थे, विताया। पूर्णकाश्यप उसका सहयोगी था जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि धार्मिक वादविवाद में बुद्ध से परास्त हो जाने पर इस अपमान को सहन न करते हुए उसने आत्महत्या कर ली थी।

अशोक के समय

बुद्ध और महावीर के युग के अनन्तर अशोक के समय तक श्रावस्ती का इतिहास अन्धकारपूर्ण है। ईसापूर्व तीसरी शती में अशोक के शासनकाल में समस्त देश उन्नति के शिखर पर जा पहुँचा। लिखा है कि धर्मयात्रा-प्रसंग में अशोक ने जेतवन और श्रावस्ती बौद्ध तीर्थों के भी दर्शन किये और इस यात्रा की स्मृति को जीवित रखने के लिये उसने हर तीर्थस्थान पर कोई न कोई स्मारक बनवाया। ह्वेनसांग लिखता है कि जेतवनके पूर्वी द्वार के दोनों ओर अशोक ने ७० फुट ऊंचे दो स्तम्भ बनवाये जिनमें से एक के शिखर पर धर्मचक्र और दूसरे पर बैल था। वह यह भी लिखता है कि इन खंभों के निकट ही अशोक ने एक सभाधि-स्तूप भी निर्माण कराया जिसमें बुद्ध की अस्थियां गाड़ी गईं। यह स्तूप उस कुएँ के पास बनाया गया जहां से बुद्ध नित्य जल भरा करते थे। साथ ही चक्रम-मार्ग था जहां वे भ्रमण किया करते थे। बौद्ध ग्रन्थों में उल्लेख है कि सम्राट् अशोक सारिपुत्र, मौद्गलायन, महाकाश्यप तथा आनन्द के समाधि-स्तूपों की पूजा करता था। अशोक के समय में श्रावस्ती की भौतिक समृद्धि अपनी चरम सीमा पर थी। उपलब्ध शिलालेखों से पता लगता है कि श्रावस्ती का प्रबन्ध मंत्रिपरिषद् (महामात्र) के अधीन था और शहर में तथा आस पास के प्रान्तों में राजपथों पर बड़े बड़े कोष्ठागार बनाये गये थे।

कुषाण-काल में

ईसवी सन् की प्रारम्भिक सदियों में जब कुषाण सम्राटों का बोलबाला था तो राजप्रसाद के कारण बौद्ध धर्म बहुत लोकप्रिय हो गया। उस समय जेतवन के मठ और मन्दिरों का जीर्णोद्धार हुआ। सर्वास्तिवादी बौद्ध सम्प्रदाय का उदय हुआ। नये स्तूप और मन्दिरों का निर्माण हुआ और उनमें बुद्ध मूर्तियां स्थापित की गईं। इनमें से बहुतों के ध्वंस आज भी विद्यमान हैं। उपलब्ध मूर्तियों में दो बोधिसत्व हैं। इनमें एक आसीन मुद्रा में है, जो दो भाइयों का दान थी, और दूसरी स्थानमुद्रा में आदमकद मूर्ति है जिसकी स्थापना कनिष्क अथवा हुविष्क कुषाण सम्राट के शासन काल में हुई थी। इसकी प्रतिष्ठा जेतवन की कोसम्ब कुटि में त्रिपिटक में प्रवीण भिक्षु बल के द्वारा सम्पन्न हुई थी। तीसरी मूर्ति अभयमुद्रा में सिंहासनासीन बुद्ध की है। यह साकेत (अयोध्या) के प्रावरिक सीहदेव की भेंट थी। पूर्वोक्त सब मूर्तियों पर लेख हैं जिनमें भेंट करने वालों के नामादि अङ्कित हैं।

गुप्तकाल में

गुप्तकाल में यद्यपि समस्त देश में हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान की प्रतिक्रिया बलवती हो उठी थी तथापि जेतवन के अन्तर्गत जितने भी बौद्ध मठ-मन्दिर आदि थे वे सब पहले की तरह सुव्यवस्थित एवं उन्नत दशा में रहे। परन्तु इस काल में श्रावस्ती नगर की बौद्ध इमारतें जीर्ण हो गई और कई एक के स्थान पर हिंदू मंदिर स्थापित हो गये। चीनी यात्री फाहियान, जिसने इस स्थान को पाँचवी सदी के आरम्भ में देखा, तत्कालीन ध्वंसावशेषों का विशद वर्णन करता है। उसके अनुसार सुदत्त और अंगुलिमाल के स्तूपों तथा महाप्रजापति के विहार के ध्वंस श्रावस्ती नगर के अंदर थे। ब्राह्मणों के द्वारा इन्हें नष्ट करने की जो चेष्टा की गई वह असफल रही। श्रावस्ती के उन ध्वंसों में जो पूर्वोक्त बौद्ध

स्मारकों के समझे जाते हैं रामायण के दृश्यों वाले बहुत से मिट्टी के फलक पाए गये थे। इनसे फाहियान के इस कथन का समर्थन होता है कि ब्राह्मणों ने बौद्ध स्थानों को अपना लिया था। ह्वेनसांग चर्चा करता है कि श्रावस्ती का विक्रमादित्य नाम वाला एक राजा बहुत प्रसिद्ध और प्रतापी था परन्तु वह श्रमणों का द्वेषी था। यह चीनी यात्री इस राजा के वंश के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखता। सम्भव है कि वह विक्रमादित्य गुप्तवंशीय सम्राट् हो।

जेतवन में बौद्ध भिक्षुओं ने फाहियान का बहुत स्वागत किया और उन्हें यह जान कर आश्चर्य हुआ कि पृथ्वी की दूरातिदूर सीमाओं से भी मनुष्य भारत आ रहे थे। उस समय न उन्होंने और न उनके पूर्वजों ने कभी 'हान' के मनुष्यों (चीनियों) को इतनी दूर आते देखा था। इस यात्री ने विहार के पूर्वी द्वार के साथ सटे हुए दो विशाल स्तम्भ और निर्मल जलपूर्ण सरोवरों, मनोहर कुंजों तथा रंगबिरंगी फूलों की क्यारियों की पृष्ठ भूमि में बने हुए कई एक स्तूप और मंदिर देखे थे। उसने एक दो मंजिला चैत्य भी देखा जहाँ बुद्ध ने अपनी आयु के २५ वर्ष बिताये थे। वह लिखता है कि यह चैत्य आरम्भ में सात मंजिल ऊंचा था और जब अकस्मात् अग्निकाण्ड से इसका दाह हो गया तो इसके स्थान पर केवल दो मंजिला चैत्य ही बनाया गया। जेतवन के बाहर चीनी यात्री ने भक्तिनी विशाखा द्वारा निर्मित 'पूर्वाराम' के ध्वंस भी देखे और वे स्मारक भी जो उन स्थानों पर बने थे जहाँ बुद्ध चंक्रमण करते या उपदेश देते थे और जहाँ उन्होंने ९६ विधर्मी प्रतिपक्षी आचार्यों को परास्त किया था। उनमें अन्तिम स्थान पर बना हुआ स्मारक ७० फुट ऊंचा था और उसमें बुद्ध भगवान् की आसीन मूर्ति रखी थी।

गुप्त काल में जेतवन समृद्धिशाली था। इस तथ्य का समर्थन इस बात से होता है कि इसके प्रायः सभी ध्वंसावशेष गुप्त कालीन स्थापत्य

कला के द्योतक हैं। इसके अतिरिक्त जेनवन की प्रायः हर इमारत के अन्दर गुप्त काल का कोई न कोई चिन्ह मिला था। इनमें मिट्टी की मुद्रा छापें और बौद्ध धर्म के मंत्रों से अंकित बहुसंख्य पट्टियां सम्मिलित थीं।

ह्वेन सांग

बौद्ध धर्म के संरक्षक राजा हर्ष के शासन काल (६०६—६४७ ई०) में जब ह्वेन साँग ने श्रावस्ती देखी तो यह प्रायः उजड़ी पड़ी थी, परन्तु फिर भी कुछ बौद्ध और बहुत से अन्य धर्मो के लोग यहाँ रहते थे। हर्ष के एक ताम्र-शासन के अनुसार यह नगर उसके राज्य के अन्तर्गत एक मुक्ति का मुख्यालय था। उन उजाड़ वास्तुओं में जो ह्वेनसांग ने यहां देखे सुदत्त और अंगुलिमाल के स्तूप तथा प्रजापति भिक्षुणी का बिहार था जिन्हें फाहियान ने भी पहले देखा था। इनके अलावा ह्वेनसांग ने एक धर्म-महाशाला भी देखी। उन दो सदियों के दौरान में जो फाहियान की यात्रा के बाद गुजरी जेतबन इतना जीर्ण-शीर्ण हो चुका था कि ह्वेन सांग ने जब इन्हें देखा तो उन मठों में कोई भी निवास नहीं करता था। उन स्मारकों में जिन्हें वह पहचान सका अशोक के दो स्तम्भ और एक ईंटों का बना अकेला मन्दिर था। इस मन्दिर में अभी बुद्ध की मूर्ति पड़ी थी। जेतवन के पड़ोस में ह्वेनसांग ने वह उत्तुंग बिहार भी देखा जिसकी चर्चा फाहियान ने की है। इसके अतिरिक्त ह्वेनसाँग कुछ ऐसे टूटे-फूटे स्तूपों का उल्लेख भी करता है जो उन स्थानों पर बनाये गये थे जहां बुद्ध के जीवन की कई घटनाएं घटी थीं। परन्तु उसने विशाखा के पूर्वाराम का कहीं नाम तक नहीं लिया है।

उत्तरकालीन इतिहास

प्रतीत होता है कि ह्वेनसांग की भारतयात्रा के कुछ ही काल बाद पुनरुत्थान क्रान्ति की लहर का एक बार फिर उदय हुआ। इसका आभास वहाँ से उपलब्ध उन अनेक लेखाँकित मुद्राछापों व बौद्ध मूर्तियों

से होता है जो ८ वीं-९ वीं सदी के बीच की हैं। ये मूर्तियाँ लोकनाथ, त्रैलोक्यविजय, अवलोकितेश्वर, सिंहनाद लोकेश्वर और जम्भाल बौद्ध देवताओं की हैं जिनमें से कुछ पर नागरी लिपि में लेख भी अंकित हैं।

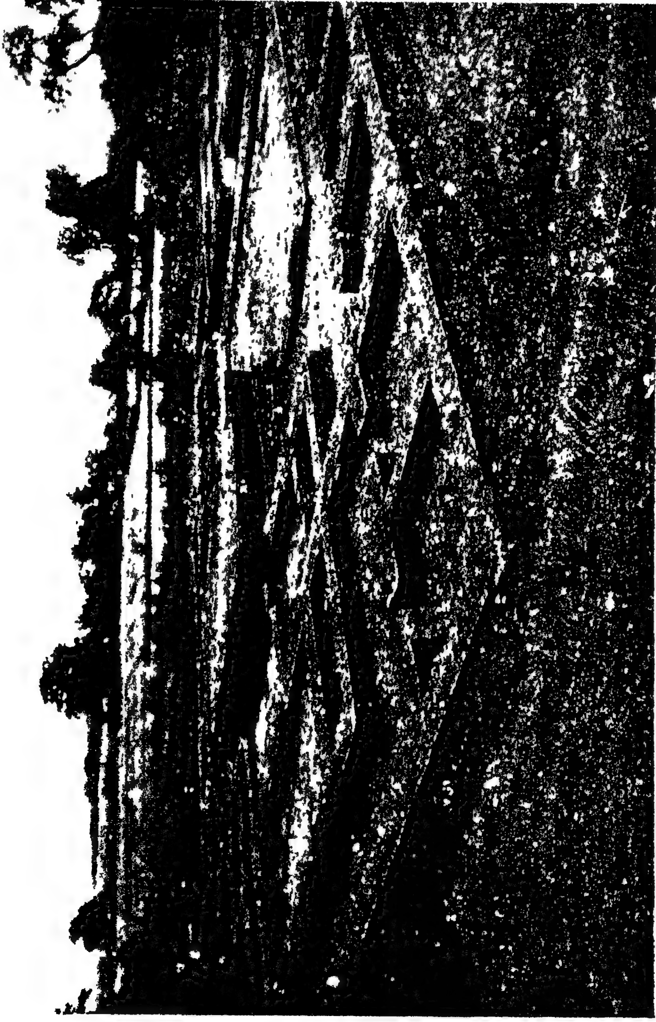
ह्वेनसाँग की यात्रा के बाद की शताब्दियों में श्रावस्ती के सम्बन्ध में कोई श्रद्धेय इतिवृत्त नहीं मिलता। श्रावस्ती से सम्बद्ध कुछ राजाओं का वर्णन भारतीय साहित्य में उपलब्ध होता हैं। उदाहरणतः दण्डी के दशकुमार चरित (८ वीं सदी ई०) के अनुसार एक धर्मवर्धन नाम का राजा यहाँ राज करता था। मध्यकाल की कृति 'जैमिनि-भारत' ग्रन्थ में कई राजाओं, जिनके नामों के पीछे 'ध्वज' आता है, का वर्णन पाया जाता है। इनकी राजधानी का नाम चंद्रिकापुरी लिखा है जो जैन साहित्य के अनुसार श्रावस्ती का ही नामान्तर था। इन राजाओं में से अन्तिम राजा का नाम सुहृद्ध्वज था। इसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह ग्यारहवीं सदी के आरम्भ में गज़नी के सुलतान महमूद और उसके सेनापति सालार मसूद से लड़ा। इस वंश के राजाओं को यश प्राप्त है कि इन्होंने जैन धर्म को पुनर्जीवित किया। इसका प्रमाण तत्कालीन कई एक जैन तीर्थङ्करों की मूर्तियां हैं जो आधुनिक सोभनाथ मन्दिर के ध्वंसावशेषों से मिली हैं। प्रचलित दन्तकथा के अनुसार यह मन्दिर उस स्थान पर बना है जहाँ जैनियों के तीसरे तीर्थङ्कर सम्भवनाथ का जन्म हुआ था।

अन्तिम दिवस

ऐसे प्रमाण हैं जिनसे पता लगता है कि जेतवन की कुछ बौद्ध इमारतें बारहवीं सदी के मध्य तक जीवित रहीं। इसका मुख्य कारण यह था कि इस धर्म को कन्नौज के गाहड़वाल राजा मदनपाल और उसके पुत्र गोविन्दचन्द्र की संरक्षकता का सौभाग्य प्राप्त रहा। उनके शासनकाल के कुछ लेख जेतवन के एक संघाराम (१९) में मिले

थे जो और स्मारकों की अपेक्षा सुरक्षित दशा में है। सम्वत् ११७६ (ई० १११९) का मदनपाल का लेख बतलाता है कि राजा के मन्त्री विद्याधर ने शैव धर्म को त्याग अपना सब धन जेतवन में एक बिहार बनवाने के काम में लगा दिया था। दूसरा लेख, जो गोविन्दचन्द्र के शासन काल (११२९-३० ई०) का है, सूचित करता है कि राजा ने श्रावस्ती के आस-पास बुद्ध भट्टारक तथा जेतवन-महाविहार के दूसरे भिक्षुओं को छः गांव दान कर दिये थे। सम्भव है कि गोविन्दचन्द्र ने यह भूदान बौद्ध-धर्मावलम्बिनी अपनी रानी कुमारदेवी के आग्रह से दिया हो। सारनाथ के बौद्ध विहार को दिये हुए अपने दानों के कारण भी यह रानी विख्यात है।

इसके अनन्तर श्रावस्ती का इतिहास अन्धकार की घन-घटा से आच्छन्न हो जाता है। मुसलमानों के शासन काल के कुछ अवशेष इस क्षेत्र में अवश्य मिलते हैं। इनमें एक मकबरा है जिसमें जनश्रुति के आधार पर इलाके के प्रसिद्ध प्रथम मुसलिम गवर्नर सय्यद मीरान का शव गड़ा है। एक दूसरी गुम्बद वाली इमारत, जो सम्भवतः मकबरा ही है, सोभनाथ जैन मन्दिर के ऊपर बनी है। श्रावस्ती के खंडहर कई सदियों तक अज्ञात दशा में ही पड़े रहे। अन्त में सन् १८६३ ई० में जनरल कनिंघम ने पुरातत्व के आलोक में इन खंडहरों की प्राचीन श्रावस्ती नगरी से एकात्मता सिद्ध कर दी।



जेतवन : संघाराम 'जी'



जेतवन : मंदिर १ और संघाराम



सोभनाथ मंदिर से प्राप्त ऋषभदेव की मूर्ति

फलक ४



रामायण के दृश्यों से अलंकृत मिट्टी का फलक (कच्ची कुटी से प्राप्त)

जेतवन (सहेठ)

वलरामपुर-वहराईच मोटर सड़क से एक फरलांग उत्तर को जेतवन बौद्ध विहार का खंडहर है (फलक ६)। खंडहर तक पहुँचने के लिये एक छोटी सड़क है जो उन रास्तों से सम्बद्ध है जिनके द्वारा दर्शक विहार के अंदर स्मारकों तक सुगमता से जा सकता है (फलक ५)। उचित है कि दर्शक अपने निरीक्षणक्रम को दक्षिण से आरम्भ करके अंदर के वास्तुओं को देखता हुआ उत्तरी मार्ग से टीले के वाहर निकल जाये और वहां से दूसरी सड़क को पकड़ कर श्रावस्ती नगरके खंडहर में प्रवेश करे। जेतवन के भग्नावशेषों की निम्नलिखित व्याख्या इसी क्रम से की गई है। वास्तुखंडों की १६ तक की संख्या जो इस व्याख्या में दी गई है कनिंघम की १८६३ की खुदाई के अनुसार है। इसके बाद की संख्या तथा वे वास्तुखण्ड जिन्हें 'ए', 'बी', आदि अक्षरों से निर्दिष्ट किया गया है फोगल, मार्शल तथा दयाराम साहनी की उन खुदाइयों के अनुसार हैं जो १९०७-०८ और १९१०-११ में कराई गई थीं।

मंदिर ११ और १२

ये दोनों मंदिर, जिनका माथा उत्तर को है, भूस्थिति में एकसमान हैं। हर एक में अंदर से सात फुट भुजा का वर्गाकार गर्भगृह और दो पार्श्ववर्ती कमरे हैं जिनमें से हरएक का क्षेत्रफल अन्दर से १०×९ फुट है। कमरे सीधी रेखा में पूर्व से पश्चिम की ओर उत्तराभिमुख बने हैं। गर्भगृह के चारों ओर प्रदक्षिणा-पथ है जिससे प्रकट होता है कि इसके अंदर अवश्य देवमूर्ति स्थापित की गई थी। पार्श्ववर्ती कमरों में भी शायद देवमूर्तियां ही थीं, या होसकता है कि ये पुजारियों के निवासस्थान हों। इन इमारतों की आयु की इयत्ता मालूम करने का इनमें कोई साधन नहीं मिला।

मंदिर और संघाराम १९

यह वास्तु पूर्वोक्त इमारतों से थोड़ी दूर पश्चिम को पूर्वाभिमुख स्थित है और जेतवन की विशाल इमारतों में से एक है। इसमें एक देवालय, आंगन का कुआँ, भिक्षुओं के निवासार्थ २० कोठरियां और एक द्वारमंडप समाविष्ट हैं। ऐसा मालूम होता है कि एक ही पीठिका पर इस इमारत का तीन वार पुर्ननिर्माण हुआ था। सबसे प्राचीनतम इमारत जिसकी दीवार के कुछ अंश दिखाई देते हैं, छठी सदी ईसवी की प्रतीत होती है। दीवार गुप्त स्थापत्यशैली की है और इसकी विलक्षणता यह है कि इसमें ईंटों के दोहरे रद्दों के पुश्ते दिखाई देते हैं। इस युग की एक प्राचीन वस्तु जो संघाराम की किसी कोठरी में उपलब्ध हुई थी एक मिट्टी की पट्टी है जिस पर धर्मचक्रमुद्रा में स्थित बुद्ध और तीन पंक्ति का गुप्त कालीन लेख अंकित है। दूसरी इमारत जो इसी स्थान पर खड़ी की गई दसवीं सदी ईसवी की है। इस समय के प्राचीन अवशेष जो यहां से प्राप्त हुए उनमें कई एक बुद्ध मूर्तियाँ हैं जिनमें एक भूमिस्पर्श-मुद्रा में है। इस मूर्ति के दोनों पार्श्वों में अवलोकितेश्वर और मैत्रेय की लघुकाय मूर्तियाँ अनुचर रूप से उकेरी हैं। एक दूसरी मूर्ति में बुद्ध बन्दर के हाथ से प्याला थाम रहे हैं। यह चित्र उस प्रसिद्ध घटना का द्योतक है जिसके अनुसार वैशाली के स्थान पर एक बंदर ने बुद्ध को मधुकी भेंट की थी। दोनों मूर्तियों पर नवीं अथवा दसवीं सदी की लिपि शैलियों वाले लेख खुदे हैं।

सबसे अन्तिम इमारत जिसकी रूपरेखा अभी सुरिक्षित है ११वीं-१२वीं शती की प्रतीत होती है। आकार में यह वर्ग है और इसकी प्रत्येक भुजा ११८ फुट लम्बी है। इसका अंदरुनी विभाग संघारामों के समान है—अर्थात् मध्यमें खुला आंगन और चारों ओर कोठरियों की श्रेणियाँ जिनके सम्मुख बरामदे थे। मुख्य प्रवेशद्वार के सामने वाली

पंक्ति के बीच की कोठरी मंदिर का काम देती थी। इस में स्थापित देवमूर्ति मुख्यद्वार से आंगन में प्रवेश करते ही उपासक के दृष्टिगोचर होती थी। इस मध्यवर्ती कोठरी के सामने एक प्रकोष्ठ था और बाकी तीन ओर प्रदक्षिणा-पथ। प्रदक्षिणा-पथ के लिये उपयुक्त अवकाश प्राप्त करने के लिये मठ के पिछवाड़े की दीवार मध्यमें बाहर को बढ़ाई गई थी। कोठरियों की पंक्तियों के सामने बने हुए बरामदे और आंगन के बीच एक छोटी दीवार है जो सम्भवतः बरामदे का छत उठाने वाले खंभों का आधार थी। बरामदे और आंगण में कंकर का फर्श बिछा था।

संघाराम में सब मिला कर २४ कोठरियां हैं। इनमें से एक कमरा प्रवेशद्वार का काम देता था। इसके मध्यमें ईंटों के बने हुए पावों की दो पंक्तियां अभी शेष हैं जो सम्भवतः लकड़ी के खंभे उठाने के आधार थे। कोठरियां छोटी हैं और इनमें से एक में पश्चिमी दीवार के साथ ईंटों का बना चार फुट ऊँचा एक मंच है। एक कोठरी में कन्नौज के राजा गोविन्दचन्द्र का जारी किया हुआ ई० ११३० तिथि वाला लेखाङ्कित ताम्रपट्ट मिला था जिसमें जेतवन-महाविहार के भिक्षुओं को श्रावस्ती के निकट कुछ गांवों के दान का वर्णन है। इस महत्वपूर्ण लेख से सिद्ध हो जाता है कि सहेठ और जेतवन एक ही स्थान के पर्यायवाची हैं, और यह भी पता चलता है कि यहां बौद्धधर्म ११ वीं सदी ईसवी तक जीवित रहा।

आठ स्तूप

संघाराम १९ के पूर्व और पूर्वोत्तर में स्थित निकटवर्ती क्षेत्र अनेक स्तूपों के निर्माण के लिये प्रयोग में लाया गया था। इस समय आठ स्तूप दिखाई देते हैं। इनमें स्तूप १० अधिक महत्व का प्रतीत होता है क्योंकि इसके पुनर्निर्माण के प्रमाण मिलते हैं। इसकी प्रारम्भिक इमारत को

उत्तरकाल में ईंटों का बृहत् आवरण चढ़ाकर बढ़ाया गया था। इस बाहरी स्तूप का पीठ सुन्दर घड़ी हुई इंटों का बना है। स्तूप में से एक लेखाँकित मुद्राछाप जो हस्तगत हुई उस पर 'बुद्धदेव' नाम ५ वीं शती की लिपिशैली में लिखा था। इन स्तूपों के पश्चिमोत्तर में एक आठ-पहल कुआँ है।

मंदिर ६ और ७

आठ-पहल कुएँ के उत्तर में दो मंदिरों के अवशेष हैं जिनमें एक, नं० ६, उत्तराभिमुख और दूसरा, नं० ७, पूर्वाभिमुख है। नं० ७ बड़ा है और ६ की अपेक्षा सुरक्षित भी है। इसमें १२ फुट भुजा वाले वर्ग के आकार का गर्भगृह है जिसके अंदर ४ फुट ६ इंच चौड़ा ईंटों का एक पीठ दरवाज़े के सामने वाली दीवार के साथ कमरे की चौड़ाई के आर पार बना है।

स्तूप १७ और १८

स्तूप नं० १७ पूर्वोक्त मंदिरों के पूर्व में बना है। इसका नीचे का भाग वर्गाकार परन्तु ऊपर का भाग ढोल के समान गोल है। पुश्तों से किनारों को तोड़कर समान केन्द्र वक्ररेखाओं के द्वारा वर्ग को ढोल के आकार में चतुरता से बदल दिया गया है। पीठ २१½ फुट भुजात्मक वर्ग के आकार का और ढोल १६ फुट व्यास का है। स्तूप का यह आधुनिक रूप मध्यकालीन है। इसका प्राचीनतर भाग, अर्थात् पीठिका, दो फुट तक ऊँचा है और चारों ओर का फर्श कंकर का बना था। स्तूप के नीचे का भाग जो फर्श के अंदर छिपा है खोदकर नंगा नहीं किया गया था। परन्तु स्तूप की गहराई का पता लगाने के लिये इसकी चोटी में भूतल से सात फुट तक गहरा छेद किया गया था। इस गहराई पर एक धातु-मंजूषा पाई गई जिसमें सोने की तार, एक मनका तथा बिल्लौर के कुछ खंड उपलब्ध हुए थे। क्योंकि अस्थि-मंजूषा कुषाण-कालीन है इसलिये यह स्तूप ईसवी सन् की पहली शताब्दी में ही बना होगा।

साथ का स्तूप, १८, मान में १४ फुट लंबी भुजा का वर्ग है और पहले स्तूप की अपेक्षा छोटा है। इसकी पूर्वी भुजा में २ फुट चौड़ा उभार है। स्तूप की चोटी में भूतल से पांच फुट की गहराई तक लम्बाकार छेद किया गया था जिसके फलस्वरूप एक लेखाङ्कित धातुपात्र मिला जिसमें सूक्ष्म अस्थिखंड, पत्थर के मनके और मोती मिश्रित थे। पात्र पर उत्कीर्ण लेख में केवल 'भदन्त बुद्धदेव' नाम कुषाण काल की लिपि में अंकित था।

स्तूप ५

सन् १८६३ में जब कनिंघम ने जेतवन की खुदाई का सूत्रपात किया तो एक तीस फुट ऊँचा टीला जिसके अंदर यह स्तूप छिपा था इस क्षेत्र में सबसे ऊंचा ध्वंस था। जब उसने इसकी चोटी को नंगा किया तो पहले उसे गोलार्ध के आकार का स्तूप और उसके नीचे एक वर्गाकार कमरा दिखाई पड़ा। यह मालूम करके कि वर्गाकार कमरे में कोई दरवाजा आदि आवागमन मार्ग नहीं था उसने अनुमान लगाया कि वह स्तूप का अधोभाग था। पूर्वोक्त वर्गाकार इमारत ईंटों का बना ठोस पीठ है जिस की हर एक भुजा २५ फुट है। परन्तु जब टीले के मलबे को साफ करके सारी इमारत को प्रकाश में लाया गया तो दो चौपहल चबूतरे नजर आए। नीचे का चबूतरा विस्तार में ८३ फुट×६१ फुट और ऊंचाई में ४ फुट था। मालूम हुआ कि उत्तरकाल में इस चबूतरे पर एक दूसरा चबूतरा खड़ा किया गया था जो विस्तार में ५८ फुट×५० फुट था और जिसकी पूर्वी भुजा के साथ सीढ़ियों की शृंखला वाला उभार था। ऊपर के चबूतरे पर वह वर्गाकार इमारत बनी थी जिसे कनिंघम ने उद्घाटित किया था। गम्भीर आलोचना के अनन्तर इस इमारत की पूर्वी दीवार में एक पुराने दरवाजे के सूक्ष्म निशान पाए गये जिससे सिद्ध हुआ कि आरम्भ में यह कमरा अवश्य ही देवालय होगा, परन्तु उत्तरकाल में दर-वाजा बंद करके इसे स्तूप में बदल दिया गया। इस बंद दरवाजे के मूल

में गड़ी हुई बौद्ध मंत्रों से अंकित भेंट की हुई मृन्मय मुद्राछापें मिली थीं। इन उत्तरकालीन इमारतों के अंदर प्रारम्भिक प्राचीनतर स्तूप छिपा है। ऐसा प्रतीत होता है कि आरम्भ में इस स्थान पर एक स्तूप था। कालान्तर में इस पर एक देवालय बनाया गया जिसे उत्तरकाल में फिर स्तूप के आकार में बदल दिया गया। प्राचीनतर स्तूप कुषाणकाल का है। मिट्टी की मुद्राछापें जो इस इमारत की चोटी पर पाई गई आठवीं से दसवीं सदी के मध्यकाल की थी।

दोहरा स्तूप और बोधिद्रुम

पूर्वोक्त स्तूप के कुछ दूर पूर्व में बोधिद्रुम है जिस का मूल एक आधुनिक चबूतरे से घिरा है। दन्तकथा के आधार पर यह वृक्ष उस स्थान पर खड़ा है जहां अनाथपिण्डद ने आरम्भ में बोधिद्रुम का पौदा लगाया था। सिंहलद्वीप का 'पूजाबलिय' नाम इतिहास इस वृक्षारोपण पुण्यकर्म से सम्बद्ध कथानक का वर्णन करता है।

दोहरा स्तूप जिसे मानचित्र में ० के चिह्न से दिखाया गया है और जो अब सम-चतुर्भुज दो कमरों के रूप में दृश्य है, बोधिद्रुम के पूर्व में स्थित है। स्तूपों की ऊंचाई ४ फुट के करीव है। वे क्रूश के आकार के हैं और उनके समाधि-कोष्ठ ६३ फुट वर्गात्मक हैं। इन स्तूपों के पूर्व में साथ ही सटी हुई एक इमारत है जिसकी दीवारें सूक्ष्म जोड़ो वाली बड़े आकार की ईंटों की बनी हुई पांच फुट की ऊंचाई तक ही खड़ी हैं। इस के अंदर मिट्टी की कुठाली में पड़े शुद्ध सोने के डले तथा राख के ढेर की उपलब्धि से प्रतीत होता है कि यह इमारत सुनार की दुकान थी।

मंदिर ३

यह मन्दिर बोधिद्रुम के उत्तर में लगभग २५० फुट के अन्तर पर पूर्वाभिमुख बना है। जेतवन में यह सब धर्मस्थानों में पूज्यतम माना जाता

था और सम्भवतः उस स्थान का प्रतीक है जहां आरम्भ में अनाथपिण्डद ने कोसम्बकुटि वनवाई थी जिसे बुद्ध ने अपने निवास से पवित्र किया था। मन्दिर के सामने ईटों के वने दो चबूतरे हैं जो उस आदिम चंक्रम-मार्ग पर बने हैं जहां बुद्ध वायुसेवन किया करते थे। इस वास्तु के समीप उपलब्ध वोधिसत्त्व की मूर्ति पर पहली सदी ईसवी का एक लेख है। इसमें लिखा है कि इस मूर्ति को बल ने कुषाणकाल में कोसम्बकुटि में स्थित बुद्ध के चंक्रम पर प्रतिष्ठित किया था। ह्वेनसांग (सातवीं सदी) ने इस मूर्ति को ईंटों के बने एक छोटे मन्दिर में देखा था जो उस समय खंडहर में अकेला ही खड़ा था।

मान में यह मन्दिर १६×१८ वर्ग फुट है और इसके अवशिष्ट अंशों में केवल पीठ, गर्भगृह और मण्डप की दीवारें ही दिखाई देती हैं। इस मन्दिर के अंदर, पश्चिमार्द्ध में स्थित ८ फुट वर्गात्मक और ४ फुट मोटी दीवारों वाला एक और देवालय था। मालूम होता है कि इसी स्थान पर एक पूर्ववर्ती धर्मस्थान भी था जिस पर उत्तरकालीन मन्दिर का आरोप किया गया। इसका निर्देश उत्तर तथा पश्चिम में आधुनिक वास्तु की नींव से नीचे के तल में विद्यमान एक जीर्ण दीवार के अवशेषों से होता है। पश्चिमोत्तर दिशा में मन्दिर से सटा हुआ एक स्तूप है जिसका पीठ वर्गाकार तथा ढोल वृत्ताकार है।

मन्दिर के सामने दक्षिण-पूर्व तथा पूर्वोत्तर दिशाओं में ईंटों के बने दो ठोस चबूतरे हैं। इनमें दक्षिणपूर्व वाला चबूतरा १० फुट चौड़ा ४ फुट ऊंचा, और पूर्व की ओर ५३ फुट की लंबाई में फैला है। इस पर चढ़ने के लिये उत्तरी माथे के मध्य में सीढ़ियां हैं। ठीक इसके सामने कुछ अन्तर पर दूसरा चबूतरा है जो पांच फुट चौड़ा है और पहले की तरह पूर्व-पश्चिम दिशा में ६१ फुट की लम्बाई में व्याप्त है। मन्दिर और चबूतरों के परस्पर सांनिध्य से अनुमान लगाया जा सकता है कि वे

कोसम्बकुटि और चङ्क्रम के स्थान पर बने हैं जिनका उल्लेख इसी क्षेत्र में उपलब्ध बोधिसत्व मूर्ति पर अंकित लेख में पाया जाता है।

मंदिर २

यह धर्मस्थान मन्दिर ३ के २०० फुट उत्तर में स्थित है और सम्भवत: उस स्थान पर बना है जहां आरम्भ में गन्धकुटि की आदिम इमारत थी। जेतवन-विहार के सम्बन्ध में अनाथपिण्डद द्वारा निर्मित यह गन्धकुटि, कोसम्बकुटि की तरह, जेतवन के पवित्रतम वास्तुओं में से एक थी। क्योंकि इसे बुद्ध भगवान् ने अपने वैयक्तिक जीवन से पुण्य बनाया था। आधुनिक इमारत उत्तरकालीन पुनर्निर्माण है जिसके अब केवल दीवारों के ठूंठे और पीठ ही शेष हैं। सबसे नीचे का दृश्य भाग गुप्तकालीन है। कहा जाता है कि एक समय गन्धकुटि सात मंजिल ऊंची लकड़ी की इमारत थी और इसमें चन्दन की बुद्धमूर्ति प्रतिष्ठित थी। फाहियान ने इसकी जगह केवल दो मंजिली ईंटों की इमारत देखी थी। यहां आने पर उसे पता लगा कि लकड़ी की सात मंजिली इमारत अग्निकाण्ड में जल चुकी थी। ह्वेनसांग जब यहां आया तो ईंटों की दो मंज़िली इमारत भी बर्बाद हो चुकी थी।

इस ध्वस्त इमारत के प्रधान भागों में एक देवालय के अवशेष और उसके सामने एक पूर्वाभिमुख सभा-मण्डप के ध्वंस विशेपरूप से वर्णनीय हैं। सोपानमार्ग, जिसके द्वारा सभा-मण्डप में पहुंचा जाता था, के अंश भी दिखाई देते हैं। देवालय का छोटा सा वर्गाकार गर्भगृह ९ फुट ६ इंच भुजा का है, और इसमें सामने की दीवार के साथ उत्तर से दक्षिण की ओर बना हुआ ५ फुट चौड़ा ईंटों का एक मंच है जो सम्भवत: किसी बड़ी मूर्ति का पीठ था। कमरे के चारों ओर की दृढ़ दीवारें ६ फुट मोटी हैं। गर्भगृह में प्रवेश करने के लिये मध्य में आठ फुट चौड़ा मार्ग है। देवालय और मण्डप के इर्दगिर्द चारदीवारी अर्थात् प्राकार तक सारा

फर्श कंकर का बना था। प्राकार ८ फुट मोटा है और पूर्व से पश्चिम की ओर लम्बाई में ११५ फुट, और उत्तर से दक्षिण की ओर चौड़ाई में ८९ फुट के विस्तार में फैला है। बुनियादों को नंगा करने के लिये जब फर्श को तोड़ा गया तो एक ७५ फुट लम्बा और ५७ फुट चौड़ा पीठ प्रकाश में आया। यह पीठ प्राकार और देवालय के मध्यवर्ती रिक्त स्थान में इस प्रकार स्थित है कि इसके चारों ओर रास्ते के लिये कुछ खाली स्थान रह जाता है। पीठ का बाहरी माथा घड़ी हुई ईंटों का बना है और कोनों पर उकेरी हुई ईटों के अलंकरण हैं। कोनों के बीच का अवकाश ईंटों के बगली सतूनों से वेष्टित हलके फलकों से मण्डित है। जेतवन के स्मारकों में यह वास्तु सबसे अधिक अलंकृत है और यदि, जैसा कि इसके सम्बन्ध में दावा किया जाता है, यह आदिम गन्धकुटि के स्थान पर बना है, तो उचित ही था कि इसके अलङ्करण पर इतना ध्यान दिया जाता।

फाहियान लिखता है कि जेतवन का प्रधान द्वार पूर्व की दिशा में था। कनिंघम ने इसका स्थान मंदिर के साथ ही पूर्व की तरफ बतलाया था और बाद में मंदिर के पूर्वी आगमन-मार्गों में जो उसने खुदाई कराई उससे भी इसकी इसी स्थिति का समर्थन हुआ, क्योंकि कंकर के फर्श वाला आगमन-मार्ग मंदिर से २२० फुट की लंबाई तक पूर्व की ओर फैला है। परन्तु दक्षिण की ओर बीच में कोठरियों की पंक्ति के आ जाने से इस मार्ग की चौड़ाई का पता नहीं लग सका। सम्भवतः यह मार्ग कुषाणकाल का है, क्योंकि समतल भूमि पर स्थित साथ के 'एफ' और 'जी' संघारामों में पहुंचने का मार्ग भी इसी सड़क पर से था और इनके अंदर से जो वस्तुएं मिलीं वे सभी कुषाण-काल की थीं।

स्तूप 'एच'

मालूम होता है कि यह स्तूप एक असाधारण पवित्र वास्तु था क्यों

कि न केवल इसका कई बार पुनर्निर्माण ही हुआ किन्तु इसकी स्थिति भी पुण्य गन्धकुटि के सामने और इस प्रसिद्ध मंदिर के आगमन-मार्ग के मध्य में है। स्तूप के कुछ अंश गुप्त समय के हैं और इसकी निम्नतम बुनियादें सम्भवत: और भी पहले काल की हैं। इसके वर्गाकार अवशिष्ट पीठ की प्रत्येक भुजा १६३ फुट है। यह स्तूप एक प्राचीनतर स्तूप के ऊपर बना है जिसका २० फुट भुजा वाला वर्गाकार पीठ चारों ओर बाहर निकला हुआ दिखाई देता है। इस पीठ के शरीर पर एक दूसरे पीठ का आवरण चढ़ा है जिसकी प्रत्येक भुजा ३७ फुट लंबी है। दूसरे आवरण के ऊपर एक तीसरा आवरण भी है। यह तीसरे काल का पीठ आकार में चतुर्भुज है जिसकी उत्तर-दक्षिण लंबाई ६० फुट और पूर्व-पश्चिम चौड़ाई ५१ फुट है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें बड़े आकार की ईंटें (१२ इंच × १२ इंच × ३½ इंच) लगी हैं।

संँघाराम 'एफ' और 'जी'

ये दो प्राचीन संघाराम मंदिर २, अर्थात् सम्भावित गन्धकुटि, के पूर्व में हैं। इनके प्रवेशद्वार दक्षिण दिशा में हैं जहां पहुंचने के लिये सीढ़ियों की पंक्ति कंकरीले फर्श वाली सड़क से शुरू होकर दरवाजे तक बनी थी। दरवाजों के पार्श्व में दो चौपहल कोठरियां थीं। संघाराम 'जी' (फलक १) भूस्थिति में चतुर्भुज है और वर्गाकार संघाराम 'एफ' से बड़ा है। इन दोनों संघारामों के अंदर कोठरियों की व्यवस्था भी परस्पर भिन्न है। प्रवेशद्वार वाली कोठरी को छोड़ कर संघाराम 'जी' में भिन्न भिन्न मान की २६ कोठरियां हैं जिनके आगे साधारणरूप से एक बरामदा है। उत्तरकाल में प्राचीन इमारत में कई एक परिवर्तन और कुछ परिवर्धन भी किये गये थे। परिवर्धनों में एक यह था कि कोठरियों की कमी पूरी करने लिये संघाराम को उत्तर की दिशा में बढ़ाया गया।

इंटों का एक बड़ा मंच जो आंगन के परले सिरे पर प्रवेशद्वार के सम्मुख बना है, देवालय की पीठिका प्रतीत होती है ।

संघाराम 'एफ' 'जी' की अपेक्षा छोटा है । इसमें २२ कोठरियां और एक द्वार-मंडप है जिसके दोनों पार्श्व में एक एक चतुर्भुज कोष्ठ है । 'जी' की अपेक्षा इस संघाराम की कोठरियां छोटी हैं । दोनों संघारामों की कोठरियां तथा आंगन के फर्श उसी नाप की ईटों के बने थे जो दीवारों के बनाने के लिये प्रयोग में लाई गई थीं । संघारामों के क्षेत्रों में जो उत्तरोत्तर खुदाइयां हुईं उनके दौरान में फर्श का बहुत सा भाग नष्ट हो गया ।

पूर्वोक्त संघारामों से प्राप्त बहुत सी वस्तुएं, जिनमें अधिकांश सिक्के हैं, सिद्ध करती हैं कि ये वास्तु कम से कम कुषाणकाल के हैं । कनिष्क, हुविष्क, वासुदेव तथा कुषाणवंश के अन्य शासकों के १५० सिक्के संघाराम 'एफ' की कोठरी नं० १५ में एक मिट्टी के बर्तन में गड़े पाए गये थे । मालूम होता है कि इन संघारामों का गुप्तयुग में भी प्रयोग होता रहा, क्यों कि उस समय की बहुत सी मिट्टी की मूर्तियों और लेखांकित मुद्राओं का संग्रह इन वास्तुओं के अंदर पाया गया था । इनमें से दो मुद्राओं पर यथाक्रम 'सनिदास' और 'मातृस्य' नाम अंकित है ।

स्तूप ८

पूर्वोक्त संघाराम 'जी' के पास ही पश्चिम की ओर स्थित यह वास्तु भिन्न भिन्न काल के दो स्तूपों का एक दूसरे पर आरोप है । लेखांकित बोधिसत्व की मूर्ति जो यहां मिली बतलाती है कि ये दोनों स्तूप अपने अपने काल में लोक पूजा का विषय बने हुए थे, क्योंकि मूर्ति पर दो भिन्न भिन्न समय के लेख खुदे हैं । इनमें से प्राचीनतर जो कुषाणकाल की लिपि में है मूर्ति का समकालीन है । इसमें लिखा है कि यह मूर्ति श्रावस्ती के जैतवन में दो भाइयों ने, जिनमें से एक का नाम शिवधर था, प्रतिष्ठित

की थी, और इसे मथुरा के एक मूर्तिकार ने बनाया था। दूसरा लेख, जो पहले के नीचे है, ६ वीं-१० वीं सदी की लिपि में है और केवल बौद्ध धर्म के मंत्र को अंकित करता है।

ऊपर का स्तूप जब पूर्णतः प्रकाश में आया तो मान में १६ फुट की भुजा का वर्ग और ऊँचाई में ६ फुट था। इसकी चारों भुजाओं का बाहरी माथा घड़ी हुई ईंटों के हलके उभारों से अलंकृत था। इसके नीचे प्राचीनतर स्तूप छिपा है जो आकार में ऊपर के स्तूप से अधिक मान का वृत्त है।

स्तूप ८ के साथ ही पश्चिम की ओर एक मध्यकालीन स्तूप (नं० ६) के भग्नावशेष हैं। इसके सम्बन्ध में केवल एक ही बात वर्णनीय है और वह यह कि इसके अंदर अभयमुद्रा में सिंहासनासीन बुद्ध की सर्वतोभद्र मूर्ति पाई गई थी। मूर्ति के पीठ में एक लेख है जिसमें अंकित है कि 'यह मूर्ति साकेत के प्रावरिक सीहदेव का दान है'। लेख की लिपि अन्तिम कुषाणकाल, अर्थात् दूसरी सदी ईसवी की मालूम होती है।

मंदिर १ और संघाराम

जेतवन के ध्वंस में यह एक और बड़ी इमारत है (फ० २) जो इस क्षेत्र के उत्तरी किनारे पर स्थित है। इस सीमा के परे खेत हैं। संघाराम पूर्वाभिमुख बना है और इसके आंगन के मध्य में एक देवालय और मण्डप हैं। यह इमारत स्थानीय वास्तुकला के अन्तिम काल की कृति मालूम होती है। इसका आकार अन्य संघारामों के समान है—अर्थात् मध्यवर्ती आंगन के चारों ओर कोठरियों की पंक्तियां हैं जिनके आगे पीठ-दीवार पर स्थित खंभों पर आश्रित बरामदा था। आँगन में संघाराम का अपना कुआं है। पूर्वी पंक्ति में मध्यवर्ती कोठरी सब कोठरियों से बड़ी है और आंगन में जाने के लिये द्वार-मण्डप का काम देती थी। इसका छत चार खंभों पर खड़ा था जिनके ईंटों के बने पाये ही अब शेप बचे

हैं। बरामदे के खंभों की तरह ये खंभे भी सम्भवतः लकड़ी के ही थे। आंगन और कोठरियों के फर्श कंकर के बने थे।

इस संघाराम की बनावट संघाराम १९ की बनावट से इस बात में भिन्न है कि इसका देवालय और मंडप खुले आंगन के बीच बने हैं। इस के विपरीत संघाराम १९ का देवालय आंगन के दूसरे पार प्रवेशद्वार के सामने की कोठरियों की पंक्ति के बीच की कोठरी थी। इस संघाराम के मण्डप की रोचक बात यह है कि इसके आगे एक ड्योढ़ी थी जिसके सामने १७½ फुट × ७½ फुट मान का विचित्र ढलुआँ फर्श था। ड्योढ़ी का छत चार खंभों पर खड़ा था जिनमें से दो के पाये अभी शेष हैं। ड्योढ़ी मण्डप और गर्भगृह में जाने वाले मार्ग के बीच बनी है।

श्रावस्ती नगरी (महेठ)

नगर-प्राकार और द्वार

जेतवन-बिहार को इसकी उत्तरी सीमा पर विसर्जन कर दर्शक को प्राचीन श्रावस्ती (महेठ) की ओर उस सड़क से बढ़ना चाहिये जो उस खँडहर में सोभनाथ-द्वार से प्रवेश करती है। यह द्वार उन द्वारों में से एक है जो प्राचीन नगर-प्राकार के इर्द-गिर्द बने थे। जैसे जैसे वह इस द्वार के निकट पहुंचता है उसे नगर के चारों ओर बने हुए महान कच्चे प्राकार का आभास होने लगता है। यह प्राकार ३$\frac{1}{4}$ मील लम्बे अर्ध चन्द्राकार घेरे में व्याप्त है। इस अर्धचन्द्र की अन्दरूनी वक्ररेखा पूर्वोत्तर दिशा में राप्ती (अचिरावती) नदी के किनारे के साथ चलती है। प्राचीन काल में यह नदी पूर्व-दक्षिण की दिशामें बहती थी। ह्वेन सांग का यह कथन कि राजधानी का घेरा २० 'लि' था प्राकारवेष्टित आधुनिक खंडहर के विस्तार से बहुत मिलता है। प्राकार की ऊँचाई भिन्न भिन्न है। अर्धचन्द्र की धनुषाकार लम्बी रेखा पर स्थित पश्चिमी भाग पूर्वी भागों की अपेक्षा प्रायः ऊंचे हैं, क्योंकि पूर्व में नदी के द्वारा प्राकृतिक सुरक्षा हो जाने के कारण प्राकार को अधिक ऊंचा बनाना निरर्थक समझा गया था। प्राकार की चोटी पर सब जगह बड़े आकार की ईंटें बिखरी पड़ी हैं जो स्पष्टरूप से कंगूरों और मेंढ के स्थानभ्रष्ट अंश हैं। प्राकार में अनेक अवकाश हैं जिनके द्वारा नगर में प्रवेश किया जा सकता है। इनमें कुछ पुराने नगर द्वार हैं और बाकी केवल दरारें या गढ़े ही हैं। द्वारों के पार्श्वों में बुर्ज बने हैं। इनमें से चार द्वार यथा इमली दरवाजा, राजगढ़ दरवाज़ा नौसहरा दरवाज़ा और कांदभारी दरवाज़ा, जो नगर प्राकार के यथाक्रम दक्षिण-पश्चिम, उत्तर-पश्चिम, उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पूर्व कोनों में स्थित हैं, सम्भवतः प्राचीन नगर के समकालीन द्वारों के प्रतीक हैं और उनके

आधुनिक नाम किसी लोकप्रथा के कारण पड़ गये हैं। सब द्वार प्रायः एक ही योजना और शैली के बने हैं। उदाहरणार्थ इनमें से एक द्वार अर्थात् इमली दरवाजे का वर्णन कर देना पर्याप्त होगा। यह द्वार जो सड़क पर स्थित सोभनाथ मंदिर के पास ही विद्यमान है २६ फुट के लगभग चौड़ा शहर के पूर्वी मार्ग से सम्बद्ध है। इसके दांए बांए ४५ फुट ऊंचे दो बुर्ज हैं। इनकी चोटी पर ईटों के मंच बने थे जिससे प्रतीत होता है कि ये बुर्ज निरीक्षण-स्तम्भ थे। बुर्जों की दृढता के लिए पुश्ता दीवारें बनाई गई थीं। द्वार के सामने कुछ ध्वंस हैं जो शायद द्वारपाल के रहने का स्थान था। इसमें ५०० के लगभग मिट्टी की लेखाँकित मुद्राछापें हस्तगत हुई थीं। उत्तर-पश्चिम में स्थित राजगढ दरवाजे के ६५ फुट ऊंचे बुर्ज उच्छ्राय में सब बुर्जों से अधिक हैं।

सोभनाथ का मंदिर

जेतवन से दर्शक ज्योंही महेठ खंडहर के पश्चिमी भाग के निकट पहुँचता है पहली इमारत जो उसे दूर से दिखाई देने लगती है वह ऊंचे टीले पर स्थित सोभनाथ का मंदिर है। यह स्थान इसलिये पवित्र है कि यहां जैनियों के तीसरे तीर्थङ्कर सम्भवनाथ का जन्म हुआ था। लखौरी ईंटों की बनी गुम्बददार इमारत जो मन्दिर के पश्चिमी भाग पर बनी है किसी प्रसिद्ध मध्यकालीन मुसलमान का मक़बरा है। इसके नीचे जैन मंदिर के ध्वंस हैं जिनमें भिन्न भिन्न काल और संदिग्ध योजना के वास्तु खंडों का मिश्रण है। इसका पूर्वी भाग कंकरीले फर्श वाला समचतुर्भुज आंगन है जो पूर्व से पश्चिम ५६ फुट और उत्तर से दक्षिण ४६ फुट के विस्तार में व्याप्त है। इसके चारों ओर ईंटों की दीवार है जिसमें मध्यकालीन मंदिरों की शैली की घड़ी हुई छोटी ईंटें लगी हैं। दीवार के अंदरूनी माथे में मूर्तियों के रखने के लिये ताकों की पंक्तियां बनी हैं। वस्तुतः बहुत सी स्थानभ्रष्ट मूर्तियां खुदाई के समय

मंदिर के प्राङ्गरण में मिली थीं। आंगन के उत्तर-पश्चिमी और दक्षिरण-पश्चिमी कोनों में दो कमरों के ध्वंस हैं और आंगन की तरह उनमें भी फर्श कंकर का ही था। उत्तर-पश्चिमी कमरे में प्रथम जैन तीर्थङ्कर ऋपभदेव की मूर्ति (फलक ३) मिली थी। आंगन में प्रवेश करने के लिये पूर्व में सीढ़ियों की कतार है। सबसे नीचे की सीढ़ी एक और पीठ पर, जो किसी दूसरे आंगन का फर्श है, स्थित है।

पक्कीकुटी

सोभनाथ मन्दिर से सड़क पक्की कुटी की ओर जाती है। यह स्थान महेठ-ध्वंस में स्थित दो बड़े टीलों में से एक है। दूसरा टीला 'कच्ची-कुटी' है। आधुनिक नाम 'पक्की कुटी' इस कारण पड़ा कि कभी किसी मुसलमान फकीर ने इस टीले को अपना निवास स्थान बनाया था, यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि यह स्थान इस घटना से बहुत प्राचीन है। कनिघम ने इस टीले की एकात्मता चीनी यात्रियों के द्वारा वरिगत 'अंगुलिमाल-स्तूप' से सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। परन्तु होई ने अपनी युक्तियों से बतलाया कि यह टीला उस धर्म-मण्डप के ध्वंस का प्रतीक है जिसके सम्बन्ध में यह दन्तकथा प्रसिद्ध है कि इसे राजा प्रसेनजित् ने बुद्ध के प्रयोगार्थ बनवाया था। परन्तु इसकी असाधारण भूस्थिति, केन्द्रीय धनुषाकार दीवार जो इसकी बहुत रोचक विशिष्टता है, और दरवाज़ों और खिड़कियों का नितान्त अभाव स्पष्ट बतलाते हैं कि यह वास्तु स्तूप के सिवाय और कुछ नहीं हो सकता। धनुषाकार दीवार के चारों ओर इस को अंगभूत, परस्पर समकोरण पर बनी हुई, ईंटों की दीवारों का अपूर्व गोरखधंधा सा दिखाई देता है। मालूम होता है कि यह दीवारों का ढांचा इसलिये बनाया गया था कि इसमें मिट्टी भर कर इसे ठोस बनाया जाय। इस स्मारक की रक्षा के लिये होई ने सारे टीले के मूल में बारिशी पानी के निकास के लिये एक सुरंग खोदी। भूतल से कुछ ऊपर दीवारों में जो

डाटें बनी हैं वे होई का अपना सुझाव था जिनका उद्देश्य उन दीवारों को सहारा देना था जिन्हें उसने सुरंग बनाने के दौरान में काटा था। इस ध्वंस में इसकी आयु निर्धारण करने का साधन कोई महत्वपूर्ण वस्तु नहीं मिली।

कच्चीकुटी

यह टीला जो पक्कीकुटी के कुछ ही दूर दक्षिण-पूर्व में स्थित है इस क्षेत्र का प्रभावशाली स्मारक है। इसका 'कच्चीकुटी' नाम इसलिये पड़ा कि एक साधु ने, जो यहां रहता था, इसकी चोटी पर स्थित देवालय का कच्ची ईंटों से पुनर्निर्माण कराया था। इस ध्वंस में भिन्न भिन्न काल के वास्तुखंडों का मिश्रण है जिनमें से सबसे प्राचीन कुषाणकाल तक और उत्तरकालीन लगभग १२ वीं सदी तक पहुंच जाते हैं। इन वास्तुओं में अनेक स्तरों का समावेश होने के कारण उनके यथार्थरूप का जानना एक जटिल समस्या है। सबसे उत्कृष्ट दर्शनीय वास्तु एक विशाल पीठ है जो पूर्व-पश्चिम दिशा में १०३ फुट और उत्तर-दक्षिण में ७२ फुट के विस्तार में व्याप्त है और जहां पहुंचने के लिये पश्चिम में ४५ फुट लंबा और १४ फुट चौड़ा एक सोपानमार्ग है। इस मार्ग के निचले भाग की रूप-रेखा धनुषाकार है। पीठ का बड़ा भाग पांच फुट ऊंचे प्राचीनतर वर्गाकार पीठ पर स्थित है जो कुषाणकाल की किसी शोभाशाली वास्तु का अवशिष्ट अंश हो सकता है। इस प्राचीनतर पीठ के उत्तर-पश्चिमी कोने के नीचे दो वृत्ताकार स्तूपों की कुर्सियां दबी हैं जो इस क्षेत्र में बौद्ध वास्तु के अस्तित्व का केवल एक ही उदाहरण है। यह तथ्य एक ऐसा प्रमाण है जिसे हम चीनी यात्रियों द्वारा उल्लिखित सुदत्त के स्तूप के साथ एकात्मता के समर्थन में प्रस्तुत कर सकते हैं। मालूम होता है कि विशाल पीठ के अस्तित्व में आने के पहले इसके नीचे का प्राचीनतर पीठ स्वयं किसी गुप्तकालीन देवालय का अधिष्ठान रहा होगा। इस सम्भावित देवालय

की दीवारें, जो सुघड़ ईंटों से अलंकृत हैं, और जिनके छज्जे बगली सतूनों पर आधारित एवं मृन्मय मूर्तिफलकों के आधारभूत दिलहों से अंतरित हैं, अब भी दिखाई देते हैं। ऐसे मूर्तिफलकों की एक बड़ी संख्या यहां से हस्तगत हुई थी जिनमें से कई एक पर 'उभरी उकेरी' में रामायण के दृश्य थे (फलक ४)। ये इस कल्पना का समर्थन करते हैं कि इस स्थान पर जो गुप्तकालीन इमारत थी वह एक हिंदू मन्दिर था।

कच्चीकुटी से कई मार्ग नौसहरा और कांडभारी नाम शहर के दरवाजों की ओर जाते हैं।

संक्षिप्त पुस्तक सूची

ए० कनिंघम	आर्क्योलाजीकल सर्वे आफ् इंडिया रिपोर्टस, I (शिमला १८७१) और XI (कलकत्ता, १८८०)
जे० लेग्गे	रेकार्ड आफ् दि बुद्धिस्टिक किंग्डम्स (आक्सफर्ड, १८८६) (फार फाहियान)
एस० बील	बुद्धिस्ट रेकार्डस आफ् दि वेस्टर्न वर्लड, २ ग्रन्थ, (लंडन, १९०६), (फार फाहियान एंड ह्वेनसांग)
टी० वाट्टर्स	आन युआन च्वांग, २ ग्रन्थ (लंडन, १९०४)
	भारत के पुरातत्व विभाग की वार्षिक रिपोर्ट, १९०७-०८, १९०८-०९, १९०९-१०, और १९१०-११, १९११-१४ (कलकत्ता)
बी० सी० ला	श्रावस्ती इन् एन्शेंट लिटरेचर, मेमा० आर्क्या० सर्वे० इंडि०, नं० ५० (देहली, १९३५)
	एपिग्राफिया इंडिका, VIII और XI (१९०५-०६ और १९११-१२ (अभिलेखों के लिये)

पुरातत्व-सम्बन्धी परिभाषाएं

Antechamber	प्रकोष्ठ, उपकोष्ठ
Approach Road	आगमन मार्ग
Architecture	वास्तुविद्या, स्थापत्यकला
Base	अधिष्ठान, पीठ, पाया
Basement	कुर्मी, अधिष्ठान
Battlement	कंगूरा
Carved in the round	चारों ओर कोरी हुई; सर्वतोभद्र
Circumambulatary Path	प्रदक्षिणा-पथ
Concrete	कंकर
Cover	आवरण
Concentric	समानकेंद्र
Causeway	उच्चमार्ग, बांध, पुल
Cogwheel	दन्तुर-चक्र
Chips	छिलके, कतले
Compound	प्रांगण, अहाता
Bastion	वप्र, बुर्ज
Bench	मंच
Enclosure Wall	चारदीवारी, प्राकार
Building Remains	वास्तुखण्ड
Foundation	बुनियाद, नींव
Flake	पपड़िया, परत
Granite	कड़ा पत्थर, कणाश्म
Hereties	विधर्मी, नास्तिक
Identity	एकात्मता